163(क)लेख भारतीय संविधान समीक्षा
(ख)लेख संकट में कौन हिन्दुत्व या इस्लाम
(ग) गाय गंगा की सुरक्षा पर प्रश्न और मेरा उत्तर।

(क) भारतीय संविधान समीक्षा

राज्य के अधिकतम तथा समाज के न्यूनतम अधिकारों की सीमाएँ निश्चित करने वाले दस्तावेज को संविधान कहते है। संविधान राज्य और समाज के बीच एक द्विपक्षीय समझौता होता है।

संविधान के चार आवश्यक गुण माने जाते हैं **(1)**स्पष्ट भाषा **(2)** स्पष्ट निष्कर्ष **(3)**छोटा **(4)**संतुलित। भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में इन चार गुणों की हम व्यापक समीक्षा करें।

(1) स्पष्ट भाषा–भारतीय संविधान की भाषा पूरी तरह द्विअर्थी है। संविधान के अनेक अनुच्छेद ऐसे है जिनके हाई कोर्ट कुछ भिन्न अर्थ निकालता है और सुप्रीम कोर्ट भिन्न। सुप्रीम कोर्ट के अर्थ भी फुल बेंच में जाकर बदल जाते हैं। और कई बार तो फुल बेंच का निर्णय भी एक दो के बहुमत से ही हो पाता है। संदेह होता है कि यदि कोई और ऊपर का कोर्ट होता तो यह निर्णय पलट भी सकता था। अपवाद स्वरूप कभी ऐसा होता तो संभव माना जा सकता हैं। किन्तु यदि ऐसी अर्थ अस्पष्टता जगह–जगह हो तो यह तो सविधान का दोष ही माना जायेगा। क्योंकि संविधान के इस दोष के कारण किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की अपेक्षा अनावश्यक तर्क की प्रवृति को प्रोत्साहन मिलता है।

(2) स्पष्ट निष्कर्ष– संविधान का संदेश साफ हो अर्थात् संविधान बनाने वालों के निष्कर्षो के संकेत बिल्कुल साफ हों। भारतीय संविधान की अनेक धाराएँ एक दूसरे के निष्कर्षो को काटती हुई प्रतीत होती है। कई धाराओं में तो उसका मूल स्वरूप ही किन्तु शब्द के बाद बदल जाता है। संविधान की एक मुख्य धारा में लिखा है कि भारत में किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म जाति भाषा या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा। उसी धारा में किन्तु लगा कर पूरे अर्थ को बदल दिया गया जिसके अनुसार महिलाओं, अल्पसंख्यको, पिछड़ों, बच्चों के लिये विशेष कानून बनाये जा सकते हैं।भाषा का सामान्य सिद्धान्त है कि अपवाद का प्रभाव मुख्य विचार का एक दो प्रतिशत ही हो सकता है। अपवाद हमेशा किन्तु के बाद लगता है। इस धारा का प्रभाव संपूर्ण आबादी के नब्बे प्रतिशत पर पड़ता है। महिलाएँ ही आधी आबादी में शामिल हैं। फिर अपवाद न होकर यह धारा तो उद्धेश्य विहीन हो गई। किन्तु लगाकर पूरा अर्थ बदलने का कारनामा कई जगह हुआ है। संविधान की उद्देश्यिका में अवसर की समानता शब्द लिखा गया है किन्तु बाद में उसका अर्थ बदल दिया गया। और भी अनेक धाराएँ है जो किन्तु परन्तु के बाद अपना अर्थ बदल देती हैं।

(3)छोटा संविधान – संविधान और कानून बिल्कुल भिन्न–भिन्न तरीके से लिखे जाते है। संविधान राज्य के अधिकतम तथा समाज के न्यूनतम अधिकारों की सीमाएँ तय करता है और कानून राज्य के न्यूनतम तथा समाज के अधिकतम अधिकारों की सीमाएँ तय करता है। स्वाभावितक है कि संविधान बहुत छोटा होना चाहिये और कानून व्यापक संदर्भो वाला। भारतीय संविधान बनाते समय अनेक ऐसी अनावश्यक बातें शामिल की गई जो कानून के अन्तर्गत थीं। ऐसी कानून की बातों को संविधान में शामिल करने से संविधान का आकार बढ़ता गया और वह वकीलों का स्वर्ग बन गया। संविधान में नीति निर्देशक तत्वों का समावेश तो किया गया किन्तु न तो उन्हें बाध्यकारी बनाया गया न ही राज्य को उनके लिये उत्तरदायी बनाया गया। इसी तरह मूल अधिकारों के बाद मूल कर्त्तव्य नामक अंश अलग से जोड़ दिया गया। कोई भी सलाह संविधान का भाग नहीं हो सकती क्योंकि सलाह बाध्यकारी नहीं हुआ करती। इन दो धाराओं ने समाज का काम तो कम और नुकसान बहुत ज्यादा किया। इन दो धाराओं ने राज्य को समाज के हर मामले में हस्तक्षेप करने के अनगिनत द्धारा खोल दिये। इन दो धाराओं ने राज्य को जनहित की मनमानी व्याख्या का अधिकार भी दे दिया। अब राज्य जब चाहे तब शराब बंदी को भी जनहित घोषित कर सकता है और शराब चालू करने को भी। राज्य जब चाहे तब विवाह की उम्र घटा भी सकता है और बढ़ा भी सकता है क्योंकि उसके परिणामों के उत्तरदायित्व के प्रति वह निश्चिंत है। संविधान बड़ा बनाने के चक्कर में उसका स्वरूप ही बदलता चला गया।

(4)संतुलित संविधान–समाज और राज्य एक दूसरे के पूरक भी होते है और नियंत्रक भी। यह दुहरी भूमिका ठीक–ठीक संचालित होती रहे ऐसी भूमिका संविधान की होती है जो दोनों के बीच में होता है। पूरक होना दोनों का कर्त्तव्य होता है और नियंत्रण अधिकार। व्यवस्था में राज्य की परिभाषा में न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका का समन्वित स्वरूप होता है न कि विधायिका का अकेले का। ऐसी समन्वित व्यवस्था भी नियम कानून से ही चल सकती है। व्यक्ति पर कानून का नियंत्रण होता है ,कानून पर सरकार का, सरकार पर संसद का, संसद पर संविधान का । स्पष्ट है कि व्यवस्था के सूचारू संचालन का दायित्व संविधान का होता है क्योंकि तानाशाही में शासन का संविधान होता है और लोकतंत्र में संविधान का शासन। कानून ,सरकार, संसद और संविधान की आवश्यकता उन व्यक्तियों या इकाईयों पर अंकुश के लिये नहीं होती जो स्वयं अनुशासित हैं। इन सबकी आवश्यकता सिर्फ ऐसी इकाईयो पर अंकुश के लिये हैं जो ऐसे नियम कानूनों के विपरीत आचरण करते हैं। संविधान की सफलता असफलता की एक प्रमुख कसौटी है कि वह किस सीमा तक ऐसी उच्श्रृखला को रोकने में समर्थ है। संविधान के संतुलन की यह एकमात्र कसौटी मानी जाती है कि वह न तो इतना बड़ा हो कि समाज स्वयं को राज्य का गुलाम महसूस करने लगे और न ही इतना लचीला हो कि कुछ लोग अनियंत्रित हो जायें। भारतीय

संविधान इन दोनों स्थितियों से हटकर एक तीसरी स्थिति में है जो ठीक–ठीक काम कर रहे लोगों पर तो अनेक अनावश्यक कानून लादकर उन्हें गुलाम सरीखा रखने की कोशिश करता है जबकि कानून तोड़ने वाले अपराधियों आतंकवादियों के लिय ऐसे उच्च मानवाधिकार का संदेश देता है कि वे आसानी से न पकड़े जाते हैं न ही सजा पाते हैं। जिनके लिये कठोर कानून की जरूरत थी उनके लिये कठोर कानूनों का संदेश। यदि राज्य ऐसी गलती करता है तो राज्य पर नियंत्रण करना संसद का काम है और संसद भी अपना काम नहीं करती तो यह दायित्व संविधान का है। लोकतंत्र में एक चैनल बना होता है जिसकी सबसे उपर की कड़ी है संविधान। यदि नीचे की कोई बड़ी उच्श्रृखला होती है तो उसका सम्पूर्ण दायित्व संविधान का है। दुर्भाग्य से संविधान ही संतुलित न होकर विपरीत संतुलन वाला है तो परिणाम तो विपरीत होना ही है।

ऊपर के मुख्य आधारों के अतिरिक्त भी हम संविधान की व्यापक समीक्षा करें तो संविधान में निम्नलिखित दुर्गुण भी पाये जाते है :–

(1)केन्द्रिय स्वरूप–दुनिया में चार प्रकार के संविधानों की कल्पना है **(क)**लोकतांत्रिक **(ख)**साम्यवादी **(ग)**धर्मवादी **(ध)**लोक स्वराज्य वादी। लोकतांत्रिक संविधान पश्चिमी देशों में लागू है। इस विधि में व्यक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है और व्यक्ति स्वतंत्र की सुरक्षा संविधान की मूल अवधारणा मानी जाती है। इन देशों में न्याय की अवधारणा यह है कि चाहे दस अपराधी भले ही छुट जायें किन्तु एक भी निरअपराधी सजा न पा जायें। इस अतिवादी अवधारण का ही परिणाम है कि इन देशों में धीरे–धीरे आतंकवाद और अव्यवस्था जोर पकड़ रही है। साम्यवादी व्यवस्था में राज्य सर्वशक्ति सम्पन्न होता है और व्यक्ति, धर्म तथा समाज गौण ऐसे देशों में राज्य ही स्वयं को समाज घोषित कर देता है। यहॉ न्याय की भी परिभाषा बदल जाती है। इन देशों में व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं होता। इनमें सिर्फ नागरिक ही होते है। जिन्हें कानूनी अधिकार तो होते हैं किन्तु मौलिक अधिकार नहीं। तीसरी व्यवस्था मुस्लिम देशों की है जहॉ धर्म सर्व शक्तिमान होता है और समाज राज्य तथा व्यक्ति गौण। इन देशों में न्याय की कुछ ऐसी अवधारणा है कि धार्मिक अपराध करने वालों को भीड़ भी दण्ड दे सकती है। यहॉ भी व्यक्ति के कोई मौलिक अधिकार नहीं होते। सब कुछ धर्म को ही केन्द्र में रखकर चलता है। एक चौथी व्यवस्था भारतीय संस्कृति की है जिसमें समाज सर्वोच्च है और व्यक्ति धर्म तथा राज्य गौण। इसमें राज्य मैनेजर होता है और समाज मालिक। न्याय व्यवस्था ऐसी होती है कि न कोई अपराधी छूटे न कोई निरपराधी दण्डित हो। न्याय और सुरक्षा के अतिरिक्त सभी दायित्व परिवार गांव जिला प्रदेश और केन्द्र की सामाजिक इकाइयों के पास विकेन्द्रित होते है। इनमें राज्य का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। व्यक्ति को मौलिक अधिकार होते है।

आदर्श स्थिति तो यह होती है कि भारतीय संविधान इस चौथे मार्ग को अपनाता किन्तु वह तो इतना विकृत हुआ कि वह शेष तीन के विषय में भी कोई स्पष्ट स्वरूप तय नहीं कर सका। भारतीय संविधान ने पश्चिम का व्यक्ति स्वतंत्रयाय भी

शामिल कर लिया और साम्यवाद का अधिकतम हस्तक्षप भी। इसने अपने अन्दर धर्म को भी समेट लिया। अब तो कुछ लोग मुस्लिम देशों की नकल करते हुए हिन्दू राष्ट्र तक की आवाज उठाते रहते है। किन्तु भारतीय संविधान ने अपनी व्यवस्था से समाज को पूरी तरह बाहर कर दिया। परिवार और गॉव शब्द तो संविधान में शामिल ही नहीं है। जिला भी शामिल है तो शासित संदर्भ में। प्रदेश और केन्द्र ने समाज के सारे अधिकार स्वयं में समेट कर इन दोनों ने तंत्र पर ऐसा कब्जा किया कि लोक बेचारा गुलाम हो गया। यद्यपि अब तक इस भारतीय प्रणाली का संविधान कही लागू नहीं हो पाया है किन्तु इस सहभागी लोकतंत्र के लिये संघर्ष जारी है।

(2)वर्ग निर्माण –सामाजिक दृष्टि से दुनिया में दो ही वर्ग होते हैं (1)सामाजिक**(2)**समाज विरोधी पहले वर्ग की दूसरे वर्ग से सूरक्षा और न्याय प्रदान करना राज्य का दायित्व होता है जिसकी सीमाएं संविधान द्वारा घोषित होती हैं। भारतीय संविधान ने समाज को आठ खंड़ों **(1)**धर्म **(2)**जाति**(3)**भाषा **(4)**क्षेत्रीयता **(5)**उम्र**(6)**लिंग**(7)**गरीब–अमीर **(8)**उपभोक्ता उत्पादक'' में विभाजित करके न केवल वर्ग निर्माण की छूट ही दी बल्कि उसे प्रोत्साहित भी किया। परिणाम हुआ कि समाज में वर्ग संघर्ष मजबूत हुआ और सामाजिक समाज विरोधी की भावना कमजोर होती चली गई। आज भारत के सभी राजनैतिक दल भारतीय संविधान की मूल भावना के अनुरूप आठों आधारों पर पूरी ईमानदारी से वर्ग निर्माण, वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष के लिये सक्रिय हैं।

(3)संसद सर्वोच्च – भारतीय संविधान राज्य और समाज के बीच एक द्विपक्षीय समझौता होता है। संसद संविधान के प्रावधानों के अनुसार निर्णय करने के लिये बाध्य है। संसद अनुसरण करती है। किंतु भारतीय संविधान संसद को ही संविधान संशोधन का पूरा अधिकार सौंपकर पूरी अवधारणा को ही पलट देती है। प्रश्न स्वाभाविक ही है कि संसद सर्वोच्च है या संविधान /सम्पूर्ण भारत में राजनेताओ ने एक भ्रम फैलाने में सफलता पा ली है कि संसद ही समाज का प्रतिनिधित्व करती है। सच्चाई बिल्कुल उलट है कि संविधान ही समाज का प्रतिनिधित्व करता है और संसद ऐसे समाज द्वारा बनाये गये संविधान का अनुसरण करती है। इसका अर्थ यह हुआ कि संविधान में संशोधन या तो समाज कर सकता है या समाज और राज्य मिलकर। राज्य तो अकेले कर ही नहीं सकता या समाज और राज्य मिलकर। राज्य तो अकेले कर ही नहीं सकता। भारतीय संविधान में संविधान संशोधन का अधिकार संसद को देना तो पूरी तरह राजनैतिक घपला है जो चोरी छिपे संसद को सर्वोच्च बनने की प्रेरणा देता है तथा स्वयं संसद का पिछलग्गू बन जाता है। बीच में अवश्य ही न्यायपालिका ने अपने बहुमत फैसले से संसद को उच्च श्रृंखला पर आंशिक रोक लगाते हुये निर्णय दिया कि संसद संविधान के मूल स्वरूप में परिवर्तन नहीं कर सकती। मेरे विचार में न्यायपालिका ने जबरदस्ती ही इस स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाया है अन्यथा संविधान निर्माताओं ने तो संसद को सर्वोच्च बनाने के सारे अधिकार संविधान में डाल ही दिये थे।

(4)मूल अधिकार की स्पष्ट व्याख्या– कसी भी लोकतांत्रिक में व्यक्ति और नागरिक पृथक–पृथक होते हैं। व्यक्ति वे होते हैं जिन्हें मूल अधिकार तो होते हैं ,किन्तु संवैधानिक अधिकार नहीं। नागरिक को दोनों ही अधिकार प्राप्त होते हैं। मूल अधिकार वे प्राकृतिक अधिकार होते हैं जिन्हें राज्य सहित कोई भी अन्य इकाई किसी भी परिस्थिति में तब तक कोई कटौती नहीं कर सकती जब तक उस व्यक्ति ने किसी अन्य के पैसे ही अधिकारों में कटौती न की हो। मूल अधिकारों पर आक्रमण ही अपराध माना जाता है। संवैधानिक अधिकारों पर आक्रमण अपराध न होकर गैर कानूनी होता है । सामाजिक अधिकारों का उल्लंधन न अपराध होता है न गैर कानूनी। वह तो मात्र अनैनिक ही हुआ करता है। मौलिक अधिकार प्राकृतिक होने के कारण व्यक्ति को स्वतः प्राप्त हैं। कोई संविधान न तो मौलिक अधिकार देता है न ही वापस ले सकता है। संविधान तो ऐसे अधिकारों की घोषणा करके उनकी सुरक्षा की गारंटी मात्र ही दे सकता है। ये अधिकार सिर्फ चार ही होते है **(1)**जीने का**(2)**अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता **(3)**सम्पत्ति का**(4)**स्वनिर्णय का। अन्य सभी अधिकार या तो संवैधानिक हो सकते हैं या सामाजिक किंतु मूल नहीं। मूल अधिकारों की सुरक्षा संविधान का दायित्व होता है तथा अन्य अधिकारों की सुरक्षा दायित्व न होकर कर्तव्य होता है। वैसे तो पूरी दुनियां संविधान मूल अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या नहीं कर पाते क्योंकि मूल अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या घोषित करते ही उनकी (उच्चश्रृंखलता) सीमित होने लगती है किंतु भारतीय संविधान ने तो इस अवधारणा को छूने का भी प्रयासनहीं किया। यदि आप भारतीय संविधान के मूल अधिकार वाला भाग पढ़े तो आपके लिये कई बार पढ़ने के बाद भी उसे ठीक–ठीक समझने या समझाने में दिक्कत ही होगी। सम्पत्ति का अधिकार पहले संविधान के मूल अधिकार में शामिल था जिसे अब निकाल दिया गया हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा जीने का अधिकार संविधान के मूल अधिकारों में शामिल हैं। किन्तु मूल अधिकारों का सबसे महत्वपूर्ण भाग'' स्वनिर्णय'' मूल अधिकारों की सूची में शामिल नहीं है। उसकी जगह धर्म मानने, संगठन बनाने और न जाने क्या–क्या बे मतलब अधिकार उसमें डाल दिये गये है जबकि ये सभी अधिकार स्वनिर्णय के ही अन्तर्गत आते है। सबसे गलत बात यह हुई कि भारतीय संविधान ने समाज को एक गलत संदेश दिया कि गैर कानूनी कार्य भी अपराध है और अनैतिक भी । इस संदेश का दुष्परिणाम हुआ कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपराधी समझकर हीन भावना में ग्रसित हो गया। भारतीय समाज में अपराधियों की अधिकतम संख्या दो प्रतिशत के आसपास ही है। अब लोग तो सिर्फ गैर कानूनी कार्यो तक ही सीमित रहते हैं, अपराध तक नहीं। फिर समाज में अपराध भाव पैदा होने के कारण अपराधियों को बहुत लाभ हुआ। सब संविधान में मूल अधिकारों की अस्पष्ट व्याख्या के कारण हुआ। आज हालत यह है कि कुछ लोग शिक्षा और रोजगार तक को मूल अधिकार में शामिल करने की वकालत करते देखे जा सकते हैं।

(4)मूल अधिकार की स्पष्ट व्याख्या– किसी भी लोकतांत्रिक में व्यक्ति और नागरिक पृथक –पृथक होते हैं। व्यक्ति वे होते हैं जिन्हें मूल अधिकार तो होते हैं किन्तु संवैधानिक अधिकार नहीं। नागरिक को दोनों ही अधिकार प्राप्त होते हैं। मूल अधिकार वे प्राकृतिक अधिकार होते हैं जिन्हें राज्य सहित कोई भी अन्य इकाई किसी भी परिस्थिति में तब तक कोई कटौती नहीं कर सकती जब तक उस व्यक्ति ने किसी अन्य के पैसे ही अधिकारों में कटौती न की हो। मूल अधिकारों पर आक्रमण ही अपराध माना जाता है। संवैधानिक अधिकारों पर आक्रमण अपराध न होकर गैर कानूनी होता है । सामाजिक अधिकारों का उल्लंधन न अपराध होता है न गैर कानूनी। वह तो मात्र अनैनिक ही हुआ करता है। मौलिक अधिकार प्राकृतिक होने के कारण व्यक्ति को स्वतः प्राप्त हैं। कोई संविधान न तो मौलिक अधिकार देता है न ही वापस ले सकता है। संविधान तो ऐसे अधिकारों की घोषणा करके उनकी सुरक्षा की गारंटी मात्र ही दे सकता है। ये अधिकार सिर्फ चार ही होते है **(1)**जीने का**(2)**अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता **(3)**सम्पत्ति का**(4)**स्वनिर्णय का। अन्य सभी अधिकार या तो संवैधानिक हो सकते हैं या सामाजिक किंतु मूल नहीं। मूल अधिकारों की सुरक्षा संविधान का दायित्व होता है तथा अन्य अधिकारों की सुरक्षा दायित्व न होकर कर्तव्य होता है। वैसे तो पूरी दुनियां संविधान मूल अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या नहीं कर पाते क्योंकि मूल अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या घोषित करते ही उनकी (उच्चश्रृंखलता) सीमित होने लगती है किंतु भारतीय संविधान ने तो इस अवधारणा को छूने का भी प्रयास नहीं किया। यदि आप भारतीय संविधान के मूल अधिकार वाला भाग पढ़े तो आपके लिये कई बार पढ़ने के बाद भी उसे ठीक–ठीक समझने या समझाने में दिक्कत ही होगी। सम्पत्ति का अधिकार पहले संविधान के मूल अधिकार में शामिल था जिसे अब निकाल दिया गया हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा जीने का अधिकार संविधान के मूल अधिकारों में शामिल हैं। किन्तु मूल अधिकारों का सबसे महत्वपूर्ण भाग'' स्वनिर्णय'' मूल अधिकारों की सूची में शामिल नहीं है। उसकी जगह धर्म मानने, संगठन बनाने और न जाने क्या–क्या बे मतलब अधिकार उसमें डाल दिये गये है जबकि ये सभी अधिकार स्वनिर्णय के ही अन्तर्गत आते है। सबसे गलत बात यह हुई कि भारतीय संविधान ने समाज को एक गलत संदेश दिया कि गैर कानूनी कार्य भी अपराध है और अनैतिक भी । इस संदेश का दुष्परिणाम हुआ कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपराधी समझकर हीन भावना में ग्रसित हो गया। भारतीय समाज में अपराधियों की अधिकतम संख्या दो प्रतिशत के आसपास ही है। अब लोग तो सिर्फ गैर कानूनी कार्यो तक ही सीमित रहते हैं, अपराध तक नहीं। फिर समाज में अपराध भाव पैदा होने के कारण अपराधियों को बहुत लाभ हुआ। सब संविधान में मूल अधिकारों की अस्पष्ट व्याख्या के कारण हुआ। आज हालत यह है कि कुछ लोग शिक्षा और रोजगार तक को मूल अधिकार में शामिल करने की वकालत करते देखे जा सकते हैं।

(4)मूल अधिकार की स्पष्ट व्याख्या– किसी भी लोकतांत्रिक में व्यक्ति और नागरिक पृथक –पृथक होते हैं। व्यक्ति वे होते हैं जिन्हें मूल अधिकार तो होते हैं किन्तु संवैधानिक अधिकार नहीं। नागरिक को दोनों ही अधिकार प्राप्त होते हैं। मूल अधिकार वे प्राकृतिक अधिकार होते हैं जिन्हें राज्य सहित कोई भी अन्य इकाई किसी भी परिस्थिति में तब तक कोई कटौती नहीं कर सकती जब तक उस व्यक्ति ने किसी अन्य के पैसे ही अधिकारों में कटौती न की हो। मूल अधिकारों पर आक्रमण ही अपराध माना जाता है। संवैधानिक अधिकारों पर आक्रमण अपराध न होकर गैर कानूनी होता है । सामाजिक अधिकारों का उल्लंधन न अपराध होता है न गैर कानूनी। वह तो मात्र अनैनिक ही हुआ करता है। मौलिक अधिकार प्राकृतिक होने के कारण व्यक्ति को स्वतः प्राप्त हैं। कोई संविधान न तो मौलिक अधिकार देता है न ही वापस ले सकता है। संविधान तो ऐसे अधिकारों की घोषणा करके उनकी सुरक्षा की गारंटी मात्र ही दे सकता है। ये अधिकार सिर्फ चार ही होते है **(1)**जीने का**(2)**अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता **(3)**सम्पत्ति का**(4)**स्वनिर्णय का। अन्य सभी अधिकार या तो संवैधानिक हो सकते हैं या सामाजिक किंतु मूल नहीं। मूल अधिकारों की सुरक्षा संविधान का दायित्व होता है तथा अन्य अधिकारों की सुरक्षा दायित्व न होकर कर्तव्य होता है। वैसे तो पूरी दुनियां संविधान मूल अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या नहीं कर पाते क्योंकि मूल अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या घोषित करते ही उनकी (उच्चश्रृंखलता) सीमित होने लगती है किंतु भारतीय संविधान ने तो इस अवधारणा को छूने का भी प्रयास नहीं किया। यदि आप भारतीय संविधान के मूल अधिकार वाला भाग पढ़े तो आपके लिये कई बार पढ़ने के बाद भी उसे ठीक–ठीक समझने या समझाने में दिक्कत ही होगी। सम्पत्ति का अधिकार पहले संविधान के मूल अधिकार में शामिल था जिसे अब निकाल दिया गया हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा जीने का अधिकार संविधान के मूल अधिकारों में शामिल हैं। किन्तु मूल अधिकारों का सबसे महत्वपूर्ण भाग'' स्वनिर्णय'' मूल अधिकारों की सूची में शामिल नहीं है। उसकी जगह धर्म मानने, संगठन बनाने और न जाने क्या–क्या बेमतलब अधिकार उसमें डाल दिये गये है जबकि ये सभी अधिकार स्वनिर्णय के ही अन्तर्गत आते है। सबसे गलत बात यह हुई कि भारतीय संविधान ने समाज को एक गलत संदेश दिया कि गैर कानूनी कार्य भी अपराध है और अनैतिक भी। इस संदेश का दुष्परिणाम हुआ कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपराधी समझकर हीन भावना में ग्रसित हो गया। भारतीय समाज में अपराधियों की अधिकतम संख्या दो प्रतिशत के आसपास ही है। अब लोग तो सिर्फ गैर कानूनी कार्यो तक ही सीमित रहते हैं, अपराध तक नहीं। फिर समाज में अपराध भाव पैदा होने के कारण अपराधियों को बहुत लाभ हुआ। सब संविधान में मूल अधिकारों की अस्पष्ट व्याख्या के कारण हुआ। आज हालत यह है कि कुछ लोग शिक्षा और रोजगार तक को मूल अधिकार में शामिल करने की वकालत करते देखे जा सकते हैं।

(5)संविधान का जनकल्याणकारी स्वरूप– बहुत प्राचीन काल से ही राज्य की कल्पना सिर्फ सुरक्षा और न्याय से जुड़ी रही है। सुरक्षा और न्याय राज्य का

दायित्व होता है तथा जनकल्याणकारी कार्य उसका स्वैच्छिक कर्त्तव्य। दायित्व और कर्त्तव्य बिल्कुल भिन्न विषय हैं। भारतीय संविधान ने जन कल्याणकारी कार्यो को प्राथमिकता घोषित करके दायित्वों को कमजोर कर दिया। संविधान की मूल अवधारणा के अनुसार राज्य समाज का मैनेजर होना चाहिये संरक्षक या कस्टोडियन नहीं। भारतीय संविधान ने राज्य को कस्टोडियन की भूमिका प्रदान कर दी। मालिक के नाबालिग, पागल या गंभीर रूप से बीमार होने की स्थिति में मैनेजर को कस्टोडियन के अधिकार दिये जाते हैं। इस प्रणाली के साथ–साथ यह व्यवस्था भी जुड़ी रहती है कि कोई अन्य स्वतंत्र इकाई मालिक के बालिग या स्वस्थ होने की समीक्षा करे और संरक्षक से मुक्त करें भारतीय संविधान में राज्य को संरक्षक तो नियुक्त करने की भूल की ही साथ ही साथ राज्य को यह भी अधिकार दे दिया कि वही समाज के योग्य और सक्षम होने की समीक्षा करता रहे। तिहत्तरवें संविधान संशोधन के समय राज्य ने ग्राम सभाओं को एक्जीक्यूटिव अधिकार दिये वे भी विधायी नहीं। साथ ही राज्य ने ये एक्जीक्यूटिव अधिकार कानूनी रूप में ही दिये हैं जिसका अर्थ है कि यदि राज्य को विश्वास हो जाये कि इन अधिकारों के कारण गांवों में भ्रष्टाचार या झगड़े बढ़ रहे हैं तो राज्य इन्हें वापस भी कर सकता है। मुझे मालूम है कि दस बीस वर्षो में राज्य को ऐसा विश्वास हो ही जायेगा।

इसी तरह कस्टोडियन अवधारणा ने सुरक्षा और न्याय के साथ–साथ जनकल्याण के अन्य कार्यो को भी राज्य के दायित्वों में शामिल कर लिया था। परिणाम हुआ कि जनकल्याण के नाम पर राज्य को समाज के अन्य सभी आर्थिक सामाजिक अधिकारों में कटौती करते जाने की छूट मिल गई जो आज भी जारी है। सुरक्षा और न्याय जैसे उसके दायित्व तो पीछे हो गये और तम्बाकू ,हेल्मेट या बारबाला नियंत्रण जैसे कार्य आगे आ गये। आर्थिक न्याय के लिये श्रम सहायता को अपना आधार मानना चाहिये था किन्तु श्रम सहायता की अपेक्षा शिक्षा पर व्यय को प्राथमिकता दी जाने लगी । जन कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने राज्य और समाज के बीच मालिक और गुलाम या संरक्षक और संरक्षित का वातावरण बना दिया। आज तो ऐसी गुलाम भावना विकसित हो गई है कि यदि भारतीय संविधान की कोई आलोचना की जाये तो कई जगह अधिक लोग यह भी कहने वाले मिल जायेगे कि दोष संविधान का नहीं उनका है जो संविधान का पालन ठीक से नहीं कर रहे या कई लोग ऐसी दलील देते मिलेंगे कि दोष संविधान का है न संसद का। दोष तो हमारा है जो ऐसे गलत लोगों को चुनकर संसद में भेजते हैं। ऐसे तर्क दाताओं की संख्या भी बहुत होती है और वे स्थापित व्यक्तित्व भी होते हैं इसलिये ऐसे नासमझो को समझाना बहुत कठिन कार्य होता है।

स्पष्ट है कि भारतीय संविधान हमारी समस्याओं के समाधान में विफल ही नही रह रहा बल्कि समस्याओं के विस्तार में भी सहायक रहा। संविधान बनाने वालो की नीयत पर तो संदेह करना उचित नहीं उस समय भारत गुलाम था। स्वतंत्रता की जल्दबाजी थी। एक तरफ जिन्ना विभाजन की तलवार लिये खडे थे। जिस कारण

हमने विभाजन को टालने के लिये स्वतंत्रता के पूर्व कई ऐसे प्रावधान संविधान मे जोडे जो विभाजन के बाद भी उसी तरह कायम रहे और आज तक घाव कर रहे है। दूसरी तरफ अम्बेडकर जी भी अपनी तलक यदा कदा दिखाते ही रहते थे जिन्हे संतुष्ट करना उस समय की मजवुरी भी थी और आवश्यकता भी। अम्बेडकर जी को संतुष्ट करने मे सफलता मिली। किन्तु उस समय के समझौते दुख देगें ही। यें समझौते तो हमारे कष्टों के मामूली कारण ही है। मुख्य कारण राजनीतिज्ञों के अन्दर उच्चश्रृ,खला ,अपराधीकरण, भ्रष्टाचार तथा सम्बन्ध से अलग एक जाती के रूप मे संगठित होने का भाव। भारतीय संविधान की भावना को रोक पाने मे विफल रहा है। मैं तो मानता हूॅ कि भारतीय संविधान मानव समाज का सबसे निकृष्ट संविधान आती है। ''अम्बेडकर जी ने तो बहुत पहले ही इस संविधान को अपनी आशाओं के विपरित बताकर इसे जला देने तक की इच्छा व्यक्त की थी। हम स्वतंत्रता के साठ वर्षो के रावण वध का प्रयत्न कर रहे है किन्तु रावण लगातार मजबूत हो रहा है क्योंकि उसकी नाभी का अमृत कुंड सुरक्षित है। भारतीय अव्यवस्था का कारण हमारी राजनीति या राजनेताओं का यह संविधान रूपी अमृत कुंड जिसकी पहचान और आक्रमण के अभाव में हम समाधान नहीं कर सकते आवश्यकता इस बात की है कि संविधान को लोक स्वराज्य की दिशा में मोड़ने के लिये तत्काल राइट टू रिकाल तथा स्थानिय इकाईयों को प्रदत्त अधिकारो के स्थायी, संवैधानिक तथा विधायी स्वरूप दिया जाता जाये। ऐसे आंदोलन को पिन प्वायन्ट करने के लिये संवैधानिक प्रमुख राष्ट्रपति के अपने मनमाने वेतन वृद्धि आदेश को आलोचना का केन्द बनाया जाय। साथ ही भारतीय संविधान का पुतला दहन करते हुए एक ऐसी प्रावधानो के साथ –साथ इन संविधान संशोधनों का भी सुझाव दे सके।

(ख) संकट मे कौन

हिन्दुत्व या इस्लाम

कई सौ वर्षो की गुलामी के काल में हिन्दुत्व पर अनेक आक्रमण होने के बाद भी हिन्दुत्व वैसे संकट मे कभी नही दिखा जैसा आज दिख रहा है। इस्लाम लगातार हिन्दुत्व पर आक्रमण कर रहा है। कश्मीर घाटी में इस्लाम ने बहुमत बनाकर यहॉ के लोगों का जीना हराम कर रखा है। आसाम में भी मुसलमान सुनियोजित तरीके से आगे बढ़ रहे है। कुछ लोगों को विदेशी धन के बल पर और कुछ को संगठित वोट के लालच में इन लोगों ने ऐसा पालतू बना लिया है कि ये लोग इनके पक्ष में कभी भी कोई भी बयान देने के लिये तैयार रहते है। एक केन्द्रीय मंत्री जी तो इस सीमा तक नीचे उतर चुके हैं कि उन्होंने बंगलादेशी घुसपैठियों को निश्चित भारत को छोड़कर अन्य सभी राजनैतिक दल लगातार संगठित मुस्लिम वोटों को अपनी ओर आकर्षित करने के नये–नये तरीके खोजते रहते है। कोई सच्चर कमेटी बना रहा है तो कोई परमाणु करार के विरोध की दुहाई दे रहा है। किसी न किसी बहाने चापलूसी की होड़ मची हुई है।

इस्लाम के धन का प्रभाव भी प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा है। पेशेवर मानवाधिकार संरक्षक संदिग्ध आतंकवादियों के पक्ष में जंतर–मंतर पर प्रदर्शन तक उतर चुके हैं। गोधरा यात्री दहन को दुर्घटना के रूप में प्रचारित करने वाले तत्व वर्तमान आतंकवादी घटनाओं को भी पुलिस अत्याचार की दिशा देने के लिये एड़ी चोटी का जोर लगाये हुए हैं। एक नया तर्क तैयार किया गया है कि जब तक सजा न हो तब तक किसी को अपराधी नही कर सकते। आश्चर्य की बात है कि इस तर्क को जामिया मिलिया के विद्धान कुलपति तथा प्रोफेसरों का भी समर्थन प्राप्त हो गया है। मैं मानता हूँ कि वह व्यक्ति अपराध सिद्ध नहीं है किन्तु क्यों उसे निरपराध कहना उचित है? यदि वह निरपराध है तो जेल में क्यों ? स्पष्ट है कि वह व्यक्ति संदिग्ध अपराधी है। उसे कानूनी सहायता पाने का अधिकार है किन्तु जब तक वह व्यक्ति निर्दोष प्रमाणित न हो तब तक उसे सामाजिक सहायता नहीं दी जा सकती क्योंकि आरोप के बाद उसे निर्दोष सिद्ध नहीं किया गया है। मानवाधिकार संगठनों ने तो आतंकवाद की सामाजिक वकालत को अपना व्यवसाय ही बना लिया है। दिल्ली जामिया मिलिया मुठभेड़ के एक आतंकवादी पर पुलिस ने आरोप लगाया कि पिछलग्गु एक वर्ष से उसे तथा कथित आतंकवादी मात्र के बैंक में तीन करोड़ रूपया का लेन–देन अंकित है। इस आरोप के खंडन में एक तथाकथित मानवाधिकार संगठन ने तर्क दिया कि उस मात्र का बैंक बैलेन्स सिर्फ चौबीस सौ तीन रूपया ही निकला इसलिये पुलिस का आरोप विश्वसनीय नहीं है। पुलिस का आरोप तीन करोड़ के लेन–देन का है और उत्तर उसके बैंक बैलेन्स का है। दूसरा तर्क यह है कि 2 आजमगढ़ जिले के उस गांव के अधिकांश मस्लिम युवक डरकर भाग गये। प्रश्न उठता है कि ऐसे फरार होने वाले युवक प्रथक दृष्टि में संदेह के पात्र हैं या समर्थन के। यदि कोई रिश्तेदार हो या मित्र हो तब भी उसकी सहायता उसकी मजबूरी मानी जा सकती है किन्तु यदि कोई सामाजिक संस्था का मुखौटा लगाकर यह सब करें तो अवश्य से कुछ दाल में काला नजर आयेगा। क्षेत्रीय कलंक की बात भी जोर शोर से उठाई गई। पूरे भारत में फैले आतंकवादी नेटवर्क के गिरफ्तार या फरार मुस्लिम युवक यदि किसी एक ही क्षेत्र विशेष के हैं तो भी उस क्षेत्र को तो दण्डित नहीं किया जा रहा है। यदि उस क्षेत्र के लोगों को इससे बदनामी होती है तो इससे उन्हें लज्जित होने की बात नहीं सर्तक होने की बात है। अपराध व्यक्तियों ने किया है। लज्जित वे होंगे जिनकी ऐसे संदिग्धों के साथ पारिवारिक या अन्य सामाजिक सहानुभूति रही है। उसी क्षेत्र के तो हाजी मस्तान भी है और दाउद इब्राहिम या अबू सलेम भी वहीं के बताये जाते हैं। अमरसिंह जी या शबाना आजमी भी वहीं के हैं। पहले वाले सिद्ध आतंकवादियों के कारण अमर सिंह जी को कोई कष्ट नहीं हुआ तो आज कष्ट का कारण क्या? उसी क्षेत्र विशेष के एक ही परिवार का एक व्यक्ति कुख्यात अपराधी है और एक भारत के सर्वोच्च संवैधानिक सम्मानित पद पर आज सुशोभित है। दोनों के कृत्य और मान सम्मान भिन्न हैं। अमर सिंह जी की संदिग्ध मुसलमान युवकों के फरार होने के कष्ट के प्रति सहानुभूति कई प्रकार के संदेहों को जन्म देगी। आप या कुलपति जी पेशेवर सहानुभूति कार नहीं हैं।

इसलिये जब तक आप किसी व्यक्ति विशेष को व्यक्तिगत रूप से निर्दोष न जान लें तब तक ऐसे संदिग्ध अपराधियों को निरपराध कहकर उनकी मदद के लिये हाथ बढ़ाने में या तो आप भूल कर रहे हैं या आपका वास्तविक चेहरा ही उजागर हो रहा है। सच्चाई क्या है यह आपके भविष्य के कदम प्रमाणित करेंगे। क्योंकि गिरफ्तार आतंकवादियों ने जो कुछ कहा है उस पर आपकी चुप्पी चुपचाप ही बहुत कुछ स्पष्ट कर रही है।

यह आईने की तरह साफ है कि दुनिया भर के साम्प्रदायिक मुसलमान संगठित होकर भारत की हिन्दू बहुल आबादी को मुस्लिम बहुल बनाने की कोशिश में लगे है। उनका एक ही घोषित लक्ष्य है कि भारत को दारूल इस्लाम में बदलने के लिये हिन्दू का अल्पमत होना आवश्यक है। वे हिन्दू को गाय और स्वयं को शेर मानकर अपना विशेषाधिकार मानते है। वे हिन्दू को गाय और स्वयं को शेर मानकर अपना विशेषाधिकार मानते हैं। वे जानते हैं कि वोट या नोट के बल पर वे हिन्दुओं में भी अपने समर्थक खड़े कर ही लेंगे। इस्लाम अब तक अपने इस प्रयत्न में सफल है।

एक दूसरी टीम ईसाइयों की है जो धन और बुद्धि से हिन्दुओं को ईसाई बनाने की कोशिश में लगे हैं धन का लालच देकर तथा हिन्दुओं की कमजोरियों का लाभ उठाकर इसाई चुपचाप अपनी संख्या बढ़ा रहे हैं। आदिवासी क्षेत्रों में ये काफी मजबूत स्थिति में हो गये हैं। ये स्वयं झगड़ा करने से बचते हैं हिन्दुओं और मुसलमानों को हमेशा भिड़ाकर रखते है। धन की इनके पास कोई कमी नहीं। विश्व स्तरीय राजनैतिक शक्ति की भी कोई कमी नहीं। इसाई मुसलमानों को तो धर्म परिवर्तन कर नहीं पाते क्योंकि वे तो स्वयं सेर के सवा सेर हैं किन्तु हिन्दू इनके लिये बहुत आसान होते हैं। इसलिये ये पूरी ताकत हिन्दुओं के ही धर्म बदलने में लगाये रखते हैं। उड़ीसा में टकराव का यही कारण है।

बिल्कुल स्पष्ट है कि हिन्दू संख्यात्मक रूप से खतरे में है। वह विस्तार तो कर ही नहीं सकता क्योंकि उसने हजारों वर्षो से और ईमानदारी से उसका पालन भी कर रहा है दूसरी ओर मुसलमान और इसाई पूरी ताकत से इन्हें समाप्त करने में सक्रिय है । तीसरी समस्या यह है कि इनकी अपनी स्वयं की कुरीतियॉ इन्हें कुछ न कुछ नुकसान ही करती रहती है और चौथी बात यह है कि सब लोग इनकी शराफत का लाभ तो उठाने की तिकड़म में लगे रहते है किन्तु चिन्ता करने वाला कोई नहीं। इस समय भारत में हिन्दुत्व का अस्तित्व खतरे में है।

यदि हम विश्व स्तर पर विचार करें तो स्थिति बिल्कुल ही उल्टी दिखती है पूरी दुनियां मे इस्लाम बदनाम हो चुका है। सारी दुनिया को विश्वास हो गया है कि मुसलमानों को न्याय अन्याय से कुछ भी लेना देना नही है। धर्म का उनका अर्थ ही होता है ''संख्या विस्तार ''। अब तक इन्हें इस विस्तार मे सफलता भी मिली किन्तु अब इस्लाम खतरे मे है। चारो ओर इनका पोल खुल चूकी है। पश्चिम के देश तो इन्हें

सबक सिखाने का प्रयत्न कर ही रहे है किन्तु भारत मे भी इनके समर्थन लगातार घट रहे है। कश्मीर में हार थक कर भारत सरकार को कड़े कदम उठाने पडे। गोधरा रेल डिब्बा दहन को जितनी आसानी से इनके दलालो ने दुर्घटना सिंद्ध करने में सफलता पा ली थी, आज पूरी मेहनत के बाद भी बाटना हाउस घटना मे इन्हें सफलता नहीं मिल रही। जन्तर –मन्तर पर इनका प्रदर्शन भी इतना फीका रहा कि कुछ पेशेवर को छोडकर कोई भी उसमें शामिल नही था। सिमी के बडे भाई मुलायम सिंह भी सिर्फ झेप मिटा रहे है। जामिया मिलिया के कुलपति मुशीरूल हसन जी का भी वार खाली चल गया। अर्जुन सिंह जी ने खाना पूर्ति से आगे जाना ठीक नही समझा। पुलिस आतंकवाद के नये नये संस्करण खोल रही है बम्बई मे गिरफ्तार सभी आतंक मुसलमान होते हुए भी इनकी हिम्मत नही हुई कि कुछ कह सकें। अब तो हालत यह हो गयी है कि यदि पुलिस वास्तव मे दों चार निरपराध मुसलमानों को भी आतंकवादी कह दे तो जनता विश्वास कर लेगी क्योंकि आम मुसलमानों की विश्वसनीयता संदेह के घेरे मे आ गई है। जो भार पहले ईरान के विरूद्ध साफ साफ बयान के बरद भी चुप है। जिस तरह भारत सहित संपूर्ण विश्व में इनकी विश्वसनीयता घटी है उससे तो यही लगता है कि भारत में हिन्दुत्व पर खतरा उतना निकट नही जितना निकट पुरी दुनियॉ मे इस्लाम के समक्ष है अमेरिका के सामने इनकी कोई तिकडम काम नही आ रही है। भारत मे भी पूरी तरह अविश्वसनीयता हो चुके है। पूरी दुनिया में इनके टुकड़ो पर पलने वाले समर्थक भी मुॅह चुराने लगे है, हालत यहां तक खराब हो गई है कि ये स्वयं भी सफाई देते फिर रहें हैं कि सभी मुसलमानों पर संदेह करना उचित नही है।

स्पष्ट है कि हिन्दु धर्म के समक्ष भी संकट है और इस्लाम के समक्ष भी किन्तु हिन्दु धर्म के समक्ष संकट है अपनी शराफत के कारण और इस्लाम के समक्ष संकट है सारी दुनियॉ को मुसलमान बनाने वाले की अनियंत्रित इच्छाओं के कारण। हिन्दु धर्मावलम्बी की इच्छाओं के खतरे को ठीक से समझना शुरू कर दे और इस्लाम अपनी इच्छाओं को नियत्रित करना शुरू कर दे तो खतरा टल सकता है किन्तु निकट भविष्य मे भी ऐसा दिखता नहीं।

हिन्दुओं का सबसे ज्यादा गुमराह संघ परिवार कर रहा है। यह अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मुसलमानों और इसाइयों के विरूद्ध भड़काकर हिन्दुओं को एकजुट करना चाहता है। इस कार्य में उसे सफलता भी मिल रही है किन्तु उसकी अपनी विश्वसनीयता खत्म हो रही है। ये लोग समान नागरिक संहिता को समान आचार संहिता के साथ जोड़ देते हैं, ये लोग हिन्दू राष्ट्र की भी मांग करने लगते हैं, ये लोग हिन्दू आतंकवाद को भी प्रोत्साहित करने लगे हैं, सच बात तो यह है कि ये लोग वह प्रत्येक प्रयत्न कर रहे हैं जो हिन्दुओं को भाजपा के पक्ष में वोट बैंक के रूप में इकट्ठा कर सकता है। ये लोग हिन्दुओं को निरीह गाय के समान प्रस्तुत करते है तथा दूसरों को जंगली शेर जंगली सुअर या जंगली भैंसे के समान। ये गाय को अन्य सब हिंसक पशुओं के साथ एक साथ लड़ने हेतु प्रेरित करते रहतें हैं। इनकी सलाह से हिन्दुत्व तो नहीं बचेगा भले ही इस्लाम को कुछ राहत मिल जाये। यदि इस टकराव से हिन्दू किनारे हो जावे तो इस्लाम और अमेरिका आमने सामने होकर निपट

लेंगे किन्तु इससे संघ की हिन्दू एकत्रीकरण की महत्वकांक्षा पूरी नहीं होगी। मेरी इच्छा है कि हिन्दू अपने ऊपर आ रहे संकट को पहचानने के साथ ही अपने प्रति सहानुभूति प्रकट करने वाले की नीयत को भी पहचाने। हिन्दू यदि मुसलमान और इसाई खतरे को पहचाने तो साथ ही संघ के मार्ग को भी पहचाने। तब उसे दिखाई देगा कि समान नागरिक संहिता की आवाज ही उसे बचा सकती है। यह आवाज हिन्दुत्व को शक्ति प्रदान करेगी। टकराव हिन्दुत्व बनाम अन्यों की जगह पर साम्प्रदायिकता बनाम धर्म निरपेक्षता के बीच केन्द्रित हो जिसमें समान नागरिक संहित धर्म निरपेख ताकतों का हथियार बने। आप देखेंगे कि इस अकेले हथियार से हिन्दुत्व पर आया खतरा टल जायेगा।

मैं जानता हूँ कि संघ परिवार इस बात को नहीं मानेगा। वह गाय और गंगा को ऊपर रखेगा। वह धर्म निरपेक्ष मुसलमानों के साथ एकजुटता नहीं चाहेगा। वह इसाइयों के साथ भी मोर्चा खोलकर रखना चाहेगा। उसके सामने न गाय और गंगा है न ही हिन्दुत्व। उसके सामने है सिर्फ कुर्सी जिस पर हिन्दू एकत्रीकरण ही उसे बिठा सकता है। किन्तु खतरा तो संघ के सामने न होकर हिन्दुत्व के सामने है। यदि संघ अपनी राजनैतिक इच्छाओं को धर्म रक्षा से अलग न करें तो संघ के साथ काम कर रहे हिन्दुओं को इस बात पर गंभीरता से विचार करना चाहिये कि उसे हिन्दुत्व की सुरक्षा के लिये कौन सी राह पकड़नी है अहिंसक समान नागरिक संहिता या हिंसक हिन्दू राष्ट्र का मार्ग।

मेरे विचार में साम्प्रदायिक तत्व अपने संख्या विस्तार के प्रयत्नों में कटते मरते हैं तो हमें तब तक चिन्तित नहीं होना चाहिये जब तक किसी धर्म निरपेक्ष व्यक्ति पर आक्रमण न हो। धर्म निरपेक्षता का स्वाभाविक अर्थ है समान नागरिक संहिता का समर्थन। बाकी लोगों के झगड़े रोकना सरकार का काम है समाज का नहीं। दुकानदारों के आपसी टकराव में अपनी टॉग ग्राहक क्यों फंसावे। हम न्याय अन्याय की चर्चा तो कर सकते हैं और न्याय के प्रति सहानुभूति भी व्यक्त कर सकते हैं किन्तु ऐसे झगड़ों में प्रत्यक्ष हाथ डालना ठीक नहीं। जो लोग दुनिया का मुसलमान, इसाई या हिन्दू बनाना चाहते है वे यदि मर कट जावें तो मानव समाज को बहुत बड़ा नुकसान नहीं होने वाला। इसलिये बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है। समान नागरिक संहिता को समर्थन और धर्म परिवर्तन कराने के प्रयत्नों से दूरी को लिटमस पेपर बनाइयें और जो मुसलमान, इसाई या संघ वाला इस पर स्पष्ट न हो उसकी बुद्धि के लिये सिर्फ भगवान से ही प्रार्थना करने की जरूरत है, निकट जाने की आवश्यकता नहीं है। मुझे उम्मीद है कि धर्म निरपेक्ष व्यक्ति इस प्राथमिकता को समझेंगे।

(ग) प्रश्न — भारत में लगातार यह चिन्ता बढ़ती जा रही है कि हिन्दुत्व खतरे में है। अच्छे–अच्छे धर्म निरपेक्ष लोग भी हिन्दुत्व की सुरक्षा के लिये कुछ विशेष करने की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं। गंगा को प्रदूषण मुक्त किया जाये, गाय की सुरक्षा की जाये, योग को बढ़ाया जाये आदि ऐसे मुद्दे हैं जो हिन्दुत्व पर आया संकट कम कर सकते हैं। आपके सहयोगी गोविन्दाचार्य जी भी आजकल व्यवस्था परिवर्तन के नाम से गाय गंगा आदि की सुरक्षा को हिन्दुत्व की सुरक्षा के साथ जोड़कर कुछ सक्रिय हैं। आप उनके इस आंदोलन में दिखाई नहीं देते। क्या कारण है?

उत्तर — मैं महसूस करता हूँ कि गाय और गंगा की भी सुरक्षा आवश्यक है और हिन्दुत्व की भी। योग, गाय और गंगा मानव समाज के भौतिक समस्याओं के समाधान तक सीमित हैं। यदि हिन्दुत्व बच गया तो गाय और गंगा स्वयं सुरक्षित हैं किन्तु गाय और गंगा बच भी जावें तो हिन्दुत्व की सुरक्षा में उनकी कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं है। गाय और गंगा की सुरक्षा मानव सेवा तक तो सीमित है किन्तु किन्ही हिन्दुत्व पर संकट के समाधान में सहायक नहीं। मैने अपना कार्य क्षेत्र सीमित कर रखा है। इसलिये मैं संवैधानिक व्यवस्था परिवर्तन में तो उनके साथ–साथ हूँ ही, हिन्दुत्व की सुरक्षा के लिये भी कोई योजना बनती है तो उसमें भी समर्थन पर विचार करता हूँ किन्तु अन्य सेवा कार्यो में मेरी कोई रूचि नहीं है। यही कारण है कि मैं उनके कुछ कार्यो में सहयोगी हूँ और कुछ में नहीं दिखता।